# विपश्यना

साधकों का मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५४७, वैशाख पूर्णिमा, १६ मई, २००३ वर्ष ३२ अंक ११


**धम्मवाणी**

**यस्स पापं कतं कम्मं, कुसलेन पिधीयति।**
**सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥**

धम्मपद- १७३.

जो अपने पहले किये हुए पाप कर्म को (वर्तमान के) कुशलकर्म से ढँक लेता है, वह मेघमुक्त चंद्रमा की भांति इस लोक को खूब भासमान करता है।

**[धारण करे तो धर्म]**

## विपश्यना की गूंज रह गयी

*(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की पच्चीसवीं कड़ी)*

विपश्यना भारत की बहुत पुरातन विद्या है, बहुत पुरातन विद्या है। जैसे कहा, ऋग्वेद में भी इसकी बहुत प्रशंसा भरी हुई है। पर जब केवल शब्द रह जाते हैं और वस्तुतः साधना की नहीं जाती तो शब्दों के अर्थ भी बदल जाते हैं। साधना करते रहें तो अर्थ खूब समझ में आते रहें। अन्यथा शब्दों के अर्थ धूमिल हो जाते हैं और कहीं-कहीं तो बिल्कुल उलटे अर्थ हो जाते हैं। पच्चीस सौ वर्षों पूर्व बोधिसत्त्व सिद्धार्थ गौतम ने अपने अनेक जन्मों की पारमिताओं के बल पर और इस जन्म के परिश्रम, पुरुषार्थ के बल पर यह खोयी हुई विद्या फिर ढूंढ निकाली और इससे केवल अपना ही कल्याण करके नहीं रह गये, अनेकों का कल्याण किया। गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा, गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा, पीढ़ी-दर-पीढ़ी, पीढ़ी-दर-पीढ़ी लगभग पांच शताब्दियों तक यह कल्याणकारी विद्या भारत के लोगों का बहुत मंगल करती रही, क्योंकि लोग इसका अभ्यास करते रहे। इसी बीच भारत में सम्राट अशोक हुआ। उसे यह विद्या बड़ी कल्याणकारिणी लगी। स्वयं अभ्यास करके, अपने परिवार के लोगों को भी इसका अभ्यास कराया ही। साथ ही अपनी प्रजा को भी वह अपनी संतान की तरह मानता था। अतः अपनी प्रजा को भी बृहद स्तर पर, बहुत बड़ी संख्या में यह विद्या सिखाने का काम किया।

उन दिनों का एक पुराना शिलालेख हमारे सामने आता है, जिसमें सम्राट अशोक कहता है, "समाज में लोगों को परस्पर प्यार रखना चाहिए, परस्पर द्वेष न हो। एक संप्रदाय दूसरे संप्रदाय की निंदा न करे। परस्पर मेल-मिलाप हो। परस्पर भाईचारा हो। लोग अपने बड़ों का सम्मान करें। माता-पिता का सम्मान करें। गुरुजनों का सम्मान करें। बुजुर्गों का सम्मान करें और छोटों को प्यार करें। अपना लोक भी सुधारें और अपना परलोक भी सुधारें। ऐसी मेरी शुभकामना है।" और कहता है ऐसी ही शुभकामना उसके पहले अनेक राजाओं के मन में भी थी। अनेक जो भी अच्छे राजा हुए, वे यही चाहते थे कि प्रजा में सुख-शांति हो, लोग परस्पर प्यार से रहें। सद्भावना हो। लेकिन कहता है कि वे सफल नहीं हो पाये, जबकि मैं सफल हो गया।

कैसे सफल हो गया? एक तो राज्य की ओर से ऐसा प्रबंध हुआ कि इन सद्गुणों का लोगों में खूब प्रचार हो। राज्य में ऐसे अमात्य नियुक्त किये गये, ऐसे मंत्री बनाये गये, जो 'धर्मामात्य' कहलाये। लोगों को धर्म समझायें और धर्म का जीवन जीने के लिए प्रोत्साहन दें। लेकिन कहता है, वह तो बहुत छोटा-सा कारण रहा। उपदेश देने से कौन बदलता है? केवल उपदेशों से लोग बदल जाते तब तो सारा देश और विश्व कब का बदल गया होता। उपदेशों की क्या कमी? तो कहता है मेरी सफलता का सही कारण यह है कि लोगों को ध्यान करना सिखाया गया। विपश्यना ध्यान सिखाया गया।

अतः स्पष्ट है कि बड़ी संख्या में इस विद्या का प्रयोग किया गया और इसके परिणाम ऐसे आये कि जिससे लोक कल्याण हुआ। लेकिन भगवान बुद्ध के चार-पांच सौ बर्स के बाद लगता है, यह विद्या अपने देश से लुप्त हो गयी। क्यों लुप्त हो गयी? यह अनुसंधान का विषय है, शोध का विषय है। पर मुझे लगता है कि यह ऐसे संप्रदायवादियों के हाथ में पड़ी, ऐसे दार्शनिकों के हाथ में पड़ी, जिन्होंने अपनी-अपनी दार्शनिक मान्यताएं इसमें जोड़ी, कुछ कल्पनाएं इसमें जोड़ी। हो सकता है कुछ कर्मकांड भी जुड़े हों और यों इसकी जो प्रमुख बात थी वह तो अंधेरे में चली गयी और जो जोड़ा गया, वह प्रमुख हो गया; वही प्रकाश में रहा और उससे तो कुछ मिलता-मिलाता नहीं। ऊपर-ऊपर से भले कुछ समय के लिए चित्त निर्मल होता है लेकिन मन की गहराइयों से, अंतर्मन की गहराइयों से, विकारों को जड़ों से निकालने का काम नहीं हो पाता। तो धीरे-धीरे विद्या ही लुप्त हो गयी।

जब लोगों को लाभ नहीं होता तो कौन करे इसका अभ्यास? और जब अभ्यास नहीं करेंगे तो धीरे-धीरे लुप्त हो ही जायेगी। पड़ोसी देश ने संभाल कर रखी और अब सन १९६९ से इस देश में फिर आयी है। लेकिन एक आश्चर्य भी देखते हैं कि अपने यहां जो ध्यानी संत हुए उनकी वाणी में जगह-जगह विपश्यना ही विपश्यना दीख पड़ती है। तो यह भी एक रहस्य है कि प्रकटतः चारों ओर विपश्यना लुप्त हो गयी, लेकिन फिर भी कहीं-कहीं किसी संत की वाणी में विपश्यना का दीपक जल रहा है। विपश्यना का प्रकाश दीख रहा है। यह भी एक अनुसंधान का विषय है कि यह कैसे हुआ? अगर उन संतों के पास विपश्यना विद्या थी तो सारे देश में क्यों नहीं फैली? अनुसंधान का विषय है। पर संतों की वाणी में तो यह बात से भरी पड़ी है।

पच्चीस सौ वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने इसी विपश्यना को

समझाते हुए कहा – **"जहा अन्तो तहा बाहो, जहा बाहो तहा अन्तो।"** –जो भीतर है, वही बाहर है; जो बाहर है, वही भीतर है। विपश्यना यही सिखाती है कि कुदरत का कानून, विश्व का विधान, प्रकृति के नियम जैसे बाहर हैं, वैसे ही भीतर हैं। लेकिन बाहर जो नियम हमें दीखता है उसे हम केवल बुद्धि के स्तर पर समझ सकते हैं और बुद्धि के स्तर पर ठीक ढंग से समझ कर अपनी बुद्धि को निर्मल कर सकते हैं। उसका लाभ तो अवश्य है, पर पूरा लाभ नहीं हुआ। तो महावीर स्वामी कहते हैं –बाहर भीतर एक ही नियम काम कर रहा है; फिर भी अपना कल्याण करना हो तो **"अन्तो, अन्तो देहान्तरानि",** अपने मन को भीतर ले जाओ। अंदर, अंदर देह के अंत तक माने देह की जहां-जहां सीमा है; उस सीमा तक ले जाओ, **'देहान्तरानि'**। फिर वहां जा कर के क्या करो? **'पस्स',** देखो माने अनुभव करो।

इस अनुभवन से क्या होगा? **"पुरई आसवानि",** –अरे जो आस्रव इकट्ठे कर रखे हैं, मैल इकट्ठे कर रखे हैं, वह उलट दिये जायेंगे। उनकी उल्टी हो जाएगी। क्या उल्टी होती है? किसी पात्र में कुछ भरा हो, उसे उलट दें तो उल्टी हो गयी। सारा गिर जायगा, उसमें जो कुछ भरा है। तो भीतर जो कूड़ा-कर्कट भरा है, सबकी उल्टी हो जायगी। सब बाहर चले जायेंगे। सारे आस्रव निकल जायेंगे, सारा मैल निकल जायगा। काम भीतर करना होगा और भीतर भी केवल साक्षीभाव से जानना होगा, और कुछ नहीं। साक्षीभाव से जानना होगा।

देखते हैं, विपश्यना की यही बात आगे चल कर। भारत का एक संत कहता है कि **"बाहर भीतर एको सच है, बाहर भीतर एको जानो, यह गुरुज्ञान बताई रे।"** गुरु ने तो ज्ञान बता दिया कि जो सच बाहर है वही भीतर है। अब उस पर केवल बुद्धि विलास ही कर के रह गये, उस पर केवल चिंतन-मनन कर के रह गये, तो बात बनी नहीं। तो नानक कहता है कि **"जनि नानक बिन आपा चीह्ने",** अपने आपको जाने बिना, माने अपने भीतर की सच्चाई को जाने बिना, **"कटेन भ्रम की काई रे"।** काई लगी रहेगी ऊपर-ऊपर तो भ्रम ही भ्रम, भ्रांति ही भ्रांति। भीतर जाना होगा और भीतर की सच्चाइयों का निरीक्षण करते हुए –सच्चाई जैसी है, वैसी है। विपश्यना ही है ना! और विपश्यना क्या होती है? विधि भी बता दी। कितनी स्पष्ट विधि कि **"थापिआ न जाई, ओ कीतान होई, आपेआपि निरंजन सोई",** जो अपने आप प्रकट हो रहा है। क्षण-प्रतिक्षण, क्षण-प्रतिक्षण जो सत्य प्रकट हो रहा है इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर, वह निरंजन ही ईश्वर है। जो अपने आप प्रकट हो रहा है उसी का दर्शन करना है माने उसी को अनुभव करना है। उस पर कुछ थोपने की कोशिश मत करो। कुछ अपनी ओर से बनाने की कोशिश मत करो। **"थापिआ न जाई, कीता न होई",** जो सच्चाई अपने आप प्रकट हो रही है, यथाभूत प्रकट हो रही है, उसी से विपश्यना होगी। उसी को देखते-देखते मैल उतरते जायेंगे, मैल उतरते जायेंगे। चित्त गहराइयों तक निर्मल होता चला जायगा। उस पर कुछ थोप लिया – हमारी परंपरागत दार्शनिक मान्यता यह; हमारी परंपरागत दार्शनिक मान्यता यह; और यहां तो सारी विपश्यना में उसका कहीं स्थान ही नहीं। उसकी कहीं जरूरत ही नहीं पड़ी। अरे, नहीं पड़ी तो नहीं पड़ी भाई! उसके बिना भी अपना काम चलता हो और मन बिल्कुल नितांत निर्मल हो जाता हो तो उस पर और कुछ क्यों थोपें? लेकिन नहीं रहा जाता। कुछ थोपेंगे ही। और थोपेंगे तो जो थोपा, बस वही प्रमुख हो गया।

अब भी कुछ लोग ध्यान कर के गये, विपश्यना कर के गये और कहते हैं एक बात बड़ी अच्छी लगी –विकार तो निकलते हैं, राग निकलता है, द्वेष निकलता है; इसे स्वीकार करते हैं। लेकिन हमारी दार्शनिक मान्यता का क्या हुआ? अरे, वह कहां गयी? वह तो इसमें आयी ही नहीं? तो क्या करें, बेचारे भरमे हुए है। अब उस पर एक आरोपण करने लगते हैं कि यह जो अंदर दीख रहा है, अनुभव हो रहा है, सो तो ठीक, बड़ा अच्छा। इससे राग निकलेगा, द्वेष निकलेगा, सचमुच निकलेगा इसमें कोई संदेह नहीं। लेकिन साथ-साथ यह भी तो देखो कि एक आत्मा एक आत्मा को देख रही है। अरे बाबा, धीरे-धीरे यह 'आत्मा' 'आत्मा' को देख रही है –प्रमुख हो जायगा और जो भीतर अनुभव हो रहा था वह गौण हो जायगा। यों ही भारत से नष्ट हुई होगी, यह अनुमान है। इसलिए जैसा है, वैसा है; **"थापिआ न जाई",** अपनी ओर से कुछ आरोपण मत करो। जहां किसी शब्द का उच्चारण करने लगे मन ही मन, तो नयी तरंगें पैदा होंगी। **हर शब्द** की अपनी एक तरंग होती है। किसी की बड़ी तेज होती है, किसी की धीमी होती है, लेकिन तरंग होती है। अब बार-बार, बार-बार उस शब्द को मन ही मन दोहराते-दोहराते एक आरोपित, कृत्रिम वास्तविकता निर्मित कर दी हमने, जो कि नैसर्गिक नहीं है, बनवाटी है। हमने बनाया है। तो संत कहता है – **"कीता न होई"।** अपने आप जो हो रहा है। अरे, शुद्ध विपश्यना है ना! और विपश्यना क्या होती है?

पहली बात तो अपने भीतर की सच्चाई को देखो। बाहर की सच्चाई बुद्धि के स्तर पर हमको धर्म की बहुत-सी बातें समझा देगी। अनित्य है, देखो चारों ओर अनित्य है, परिवर्तनशील है, सब बदल रहा है –यह आंख के सामने देख रहे हैं बाहर से। इसका असर मन पर भी पड़ेगा। कल जन्मा और देखो मर गया। कोई समय पाकर मर गया। देखो, सब अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। ऐसे चिंतन का असर पड़ता है लेकिन गहराइयों तक नहीं जाता, यह दिन रात देखते हैं ना! तो ऊपर-ऊपर से बाहर-बाहर की बातों को सुन कर, देख कर हम अपने पूरे मानस को बदल लें, यह कठिन बात है, होने वाली बात नहीं। तो भीतर जाना पड़ता है। इसीलिए एक और संत कहता है

**"तीन हाथ एक अड़धाई",** तीन पूरे हाथ और एक यह आधा हाथ, माने साढ़े तीन हाथ की यह काया; **"तीन हाथ एक अड़धाई, ऐसा अंबर देखो मेरे भाई, चीह्नो मेरे भाई"।** यह जो भीतर का अंबर है, भीतर का आकाश है, अरे, इसका अनुभव करो। इसे देखो माने इसका अनुभव करो। इसे 'चीह्नो' माने इसे पहचानो। इसको पहचानने से सारा रहस्य समझ में आ जायगा –कैसे विकार जागते हैं, कैसे इनका संवर्धन होता है और कैसे जब संवर्धन होता है तो हमारे सिर पर चढ़ कर के वाणी से ऐसा काम करवा देता है जो नहीं करना चाहिए। शरीर से ऐसा काम करवा देता है जो नहीं करना चाहिए। हम जैसे गुलाम हो गये। अरे, तो जहां इसका उद्गम है, वहां रोक लगाएं। काला नाग बांबी में से बाहर निकलता है। बाहर निकलते ही उसका मुँह पकड़ लिया गया तो ठीक। बाहर निकल गया, फण उठा दिया। अब तो खतरनाक हो गया। ये विकार जहां जागते हैं, वहीं समाप्त होने चाहिए। उनको आगे न बढ़ने दें। यही विपश्यना है। इस अंबर को देखें। और अंबर को देखने से क्या मिलेगा?

भीतर की इस सच्चाई को देखने से क्या मिलेगा? तो यह संत कबीर कहता है, अरे, परतें उतरती चली जायेंगी। विकारों की एक पर एक परतें उतरती चली जायेंगी। ये विकार अवगुंठन जैसे हैं, घूंघट जैसे हैं। हमें सच्चाई देखने नहीं देते। लेकिन हम केवल जैसा है वैसा देखते जांय, देखते जांय तो कुदरत के अपने नियम हैं। अगर हम साक्षीभाव से देखते हैं –भोक्ताभाव छोड़ दिया, कर्ताभाव छोड़ दिया। केवल साक्षीभाव से देख रहे हैं, साक्षीभाव से देख रहे हैं तो अपने आप परतें उतरती चली जायेंगी, उतरती चली जायेंगी। उससे गहरा सत्य, उससे गहरा सत्य और

अंततः परम सत्य तक पहुँच ही जायेंगे। इसी बात को शब्दों में उतारता हुआ संत कबीर कहता है –

**"घूंघट के पट खोल रे, तुझे पिया मिलेंगे"॥**

एक पट नहीं है घूंघट का। घूंघट के पट, न जाने कितने पट, न जाने कितने पर्दे, न जाने कितने अवगुंठन लगाये हुए हैं! एक पर एक, एक पर एक, उतरता चला जाय। उतरता चला जाय, तो परम सत्य प्राप्त हो जाय। अरे, वही तो प्रेय है। वही तो श्रेय है। उसी में हमारा कल्याण है। वहां तक पहुँचने के लिए भीतर काम करना पड़ता है।

इसी संत कबीर से किसी ने पूछा, आप यह जो बार-बार 'हरि' कहते हो, कभी 'राम' कहते हो, कभी 'गोविंद' कहते हो, कभी 'अल्लाह' कहते हो, कभी और कुछ कहते हो – यह क्या है? बताओ तो? तो क्या बताये! संत ने विपश्यना जरूर की है। उसकी वाणी कहती है, उसने विपश्यना की है। तो कहता है –

**कहे कबीर 'हरि' ऐसा रे! जब जैसा तब तैसा रे!!**

'जब जैसा', जिस क्षण जो सत्य प्रकट हो गया, अरे, वही हरि है, वही ईश्वर है। सत्य ही तो ईश्वर है। परम सत्य ही तो परमेश्वर है। तो **"जब जैसा तब तैसा रे",** जब जैसा आया, उसको वैसे ही स्वीकार करो। उसमें कोई परिवर्तन करने की कोशिश मत करो। कोई विकार भी जागा है तो देखो, इस समय विकार जागा है। मन में वासना जागी है, भय जागा है, अहंकार जागा है, राग जागा है, द्वेष द्वेष जागा है, कुछ भी विकार जागा है, इसके साथ-साथ संवेदना क्या हो रही है? संवेदना क्या हो रही है, उस समय उसे जानेंगे। तो जड़ों तक चले गये। अब वह विकार जड़ों से उखड़ना शुरू हो जायगा। जड़ों से उखड़ना शुरू हो जायगा। उसकी उदीर्णा होगी, हम देखते चले जायेंगे तो निर्जरा होती चली जाएगी। तो क्षय होता चला जायगा।

अरे, उदीर्णा ही नहीं होने देंगे, उस पर कोई ऐसा लेप लगा देंगे कि भीतर वाले विकार की ऊपर उदीर्णा ही नहीं होने देंगे तो कैसे उसकी निर्जरा होगी? कैसे उसका क्षय होगा? क्योंकि विद्या भूल गये। विद्या क्यों भूल गये, यह हम नहीं कह सकते, क्यों हुआ ऐसे? यह अनुसंधान का विषय है, जो शोधकर्त्ता लोग हैं, इस पर खोज करें। क्यों हुआ ऐसे? लेकिन यह जरूर लगता है कि कोई भी व्यक्ति एक जीवन में संत नहीं बन जाता। अनेक जन्मों से चित्त का शोधन करते-करते, चित्त को निर्मल करते-करते संत होता है। तो जो अनेक जन्मों से यह काम करते आये हैं, चित्त को निर्मल करते आये हैं, उनको किसी गुरु की आवश्यकता नहीं होती। अपने आप भीतर से जाग पड़ता है। भीतर-ही-भीतर सारे शरीर में – अरे, यह मिट्टी की लोथ जैसा शरीर, यह मृण्मय शरीर चिन्मय हो जाता है। चेतना ही चेतना की तरंग। ऊर्जा की तरंग, ऊर्मियां ही ऊर्मियां, ऊर्मियां ही ऊर्मियां।

बहुत लोग ऐसे शिविरों में आते हैं और कहते हैं जैसे ही विपश्यना दी गयी कि सारे शरीर में चेतना की धारा बहने लगी। कोई-कोई यह भी कहते हैं कि ऐसा तो मुझे बचपन से हो रहा था। मैं जानता नहीं था कि यह क्या था? विद्या लुप्त हो गयी ना! क्या करे बेचारा! अनुभव तो हो रहा था पर उसे किस प्रकार साक्षीभाव से देखे? यह लुप्त हो गया। तो कोई अनेक जन्मों से काम करता होगा तो अपने आप जाग पड़ेगी। हो सकता है, इन संतों में अपने आप जाग पड़ी हो और ये उसी का वर्णन करने लगे। अपने अनुभव लोगों को बताने लगे। लेकिन यह विद्या अपने वैज्ञानिक ढंग से जिस प्रकार भारत में सिखायी जाती थी आज के दो हजार या पच्चीस सौ वर्ष पहले जिस ढंग से सिखायी जाती थी, वह लुप्त हो गयी। पड़ोसी देश ने संभाल कर रखा तो फिर आयी, हमारे भाग्य की बात हुई।

एक घटना घटी। ब्रह्मदेश से यह विद्या लेकर के भारत आया उसके कोई लगभग दो वर्षों बाद महात्मा गांधी के आश्रम में, सेवाग्राम में एक शिविर लगा। उनकी पुत्रवधु निर्मला गांधी ने शिविर लगाया और गांधी जी के साथ रहने वाले दस-बारह बूढ़े-बूढ़े लोग उसमें शामिल हुए। उनमें से एक था – अण्णासाहब सहस्रबुद्धे। आठवें-नौवें दिन उसे धारा-प्रवाह मिलने लगा, सारे शरीर में कहीं ठोसपने का नामोनिशान नहीं। तो हमारे पास आता है, कहता है कि गोयन्काजी, अब समझ गया। वह बूढ़ा क्या किया करता था। क्या किया करता था? तो कहता है वह प्रार्थना-सभा करता था, हजारों लोग सामने बैठते थे और सबको **"रघुपति राघव राजाराम",** की रामधुन करवाता था और खुद आंख बंद किये मंच पर बैठा रहता। तो हमसे रहा नहीं गया। एक दिन पूछ लिया, महाराज, आप क्यों नहीं करते? औरों से तो रामधुन करवाते हैं, आप क्यों नहीं करते? **"मैं उससे बड़ा काम कर रहा हूं, भीतर से ईश्वर का दर्शन कर रहा हूं।"** क्या ईश्वर का दर्शन कर रहे हो? कहते हैं, "मेरे भीतर एक चेतना का प्रवाह चलता है। ऊपर से नीचे तक एक ऊर्जा का प्रवाह चलता है। बस, उसे देखता हूं। बड़ी शांति मिलती है, उससे चित्त बड़ा निर्मल होता है और उस समय जो निर्णय करता हूं, सही निर्णय करता हूं।" अरे, तो अनेक जन्मों से करता आया होगा ना! अपने आप हो गया।

तो भाई, अब तो यह विद्या विधिपूर्वक आयी है। इसका लाभ भारत के सारे लोगों को ही नहीं, विश्व के सारे लोगों को मिले। अरे, बड़ा कल्याण होगा। ऐसी कल्याणकारी विद्या, इसमें कुछ जुड़ने न पाये। शुद्ध रूप में जैसी है वैसी है। जो सत्य प्रकट हो रहा है, उसको समता से देख रहे हैं, समता से देख रहे हैं, तटस्थभाव से देख रहे हैं। निर्मल होते चले जायेंगे, निर्मल होते चले जायेंगे। सचमुच बड़ा कल्याण होगा। बड़ा मंगल होगा। कल्याण ही कल्याण। मंगल ही मंगल। स्वस्ति ही स्वस्ति। मुक्ति ही मुक्ति।

**वेबसाइट पर अब हिंदी 'विपश्यना' पत्रिका भी पढ़ें, इसका पता –**

http://www.vri.dhamma.org/NewslettersHindi/index.html (for current)
http://www.vri.dhamma.org/NewslettersHindi/oldissueshindi.html

## भूटान में विपश्यना

भूटान की 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन', समत्से के तत्वावधान में गत जनवरी-फरवरी में वहां एक शिविर लगा जिसमें २५ पुरुष एवं २० महिलाओं ने भाग लिया। विभाग के निदेशक ने गत वर्ष एक शिविर में सम्मिलित होकर धर्मलाभ प्राप्त किया था। शिविर में सम्मिलित साधकों को मिले धर्मलाभ से प्रभावित होकर शिक्षा-मंत्रालय ने उपरोक्त (एन.आई.ई.) में प्रतिवर्ष चार शिविर नियमित रूप से लगाने का आदेश जारी किया है, जिसमें विभाग के सभी टीचर्स और स्टॉफ को भाग लेने की विशेष सुविधा प्रदान की जायगी।

## एक साधक का दृढ़ संकल्प

पूज्य गुरुजी के चरणों में रोहित का साष्टांग प्रणाम। ...

आपने धम्मगिरि पर जो समझाया था कि धर्म का असली मर्म उसे जीवन में उतारने में है। उस समय तो बात ठीक से पल्ले नहीं पड़ी पर अब मैं यह शत-प्रतिशत गारंटी से कह सकता हूं कि मेरा यही उद्देश्य है कि मैं धर्म को जीवन में उतारूं। मुझे हर्ष है कि मैंने इसकी शुरुआत कर दी है।

पिछले लगभग ३ सप्ताह से मैंने बहुत ड्रैस्टिक चेंजेज किये हैं। मैंने निश्चय किया कि अब मैं पूर्णरूप से धर्म का जीवन जीऊंगा। उसी क्षण से वाणी के शील का पालन शुरू किया जो लगभग पूर्ण रूप से बरकरार है।

१. मैंने सबसे पहले क्रिटिसिज्म बंद किया। इतने दिनों में किसी भी व्यक्ति, वस्तु या घटना पर कोई निंदा नहीं की। बीच में एक दिन जरूर २-३ घंटे पांव फिसल गया था पर फिर ट्रैक पर। २. चुगली लगभग बंद कर दी है।

३. कड़वी बात केवल ५-६ बार ही, मां, भाई या पिताजी के साथ की और एक-दो वाक्य में होश आते ही माफी मांगी या फिर विषय बदल दिया।

४. व्यर्थ बातें आरंभ करतेही सजग हो जाता हूं और बंद करदेता हूं।

गुरुजी! उपरोक्त बातें करनेसे मैं बड़ा हल्का महसूस कर रहा हूं और किसीसे भी बात करतेहुए ध्यान रखता हूं कि पाजिटिव ही बातें करूं, निगेटिव बिल्कुल नहीं। इक्के-दुक्के प्रसंग छोड़ कर झूठ नहीं बोला, वह भी पूर्णरूप से ईमानदार बन कर और अर्धसत्य को भी बहुत बार टाला। इतना सब करतेहुए जब भी याद रहा, संवेदनाओं के प्रति सजग रहा। जितनी बार भी अप्रिय व्यक्तियों या घटनाओं का चिंतन चला, हर बार मुस्कराकर उन्हें मैत्री ही दी। यह पत्र लिखते समय भी संवेदनाओं के प्रति सजग हूं। जितनी बार भी याद रहता है, वर्तमान में जीने की कोशिश करता हूं।... *आपका आज्ञाकारी, रोहित कोहोक, धुळे.*

## मृत्यु मंगल

पूना के श्री कांतिलाल पारिख विपश्यना के प्रारंभिक दिनों में शिविर में सम्मिलित हुए और यह विधि उन्हें इतनी अच्छी लगी कि इससे संबंधित विभिन्न प्रकार की सेवाओं से जुड़ कर अपना शेष जीवन इसी को समर्पित कर दिया। उनके पुत्र श्री मयूख ने लिखा है कि अंतिम क्षण तक वे कर्मठ और सजग रहे, समतापूर्वक रह कर बहुत शांति से शरीर छोड़ा। उनका साधनामय जीवन और शांत मृत्यु हम सब के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण सिद्ध हुआ है।

टोंक (राजस्थान) के श्री राजेंद्र प्रसाद जैन सन् १९७६ से ही विपश्यना से जुड़े हुए थे। २५-२६ वर्षों के आध्यात्मिक जीवनकाल में उन्होंने अन्य साधना-विधियों का भी तुलनात्मक अध्ययन और परिशीलन करके पाया कि विपश्यना ही दुःखमुक्ति का एकमेव उपाय है। राज्यसेवा के अतिरिक्त बचे हुए समय में वे सदा साधनामय ही रहते। जयपुर केंद्र पर कई प्रकार की सेवाएं देते रहे। गठिया के विशेष आघात के कारण उन्हें अति कठिन परिस्थितियों में-से गुजरना पड़ा। गुर्दे के ऑपरेशन के समय विकट स्थिति में जहां अन्य लोग चिंतित और परेशान थे वहीं उनकी समता और चेहरे की मुस्कान देखते ही बनती थी। अंतिम क्षण आवाज अवरुद्ध हो जाने पर भी हाथ के इशारे से शांत्वना देते हुए अत्यंत शांतचित्त से शरीर छोड़ा। उस समय की शांति और समता देख कर उनके माता-पिता तथा अन्य प्रत्यक्षदर्शी स्तंभित थे।

*– निरंजनलाल टेलर, टोंक*

औरंगाबाद के केंद्रीय कारागार के साधक हवालदार बाजीराव मोरे लिखते हैं कि मेरे ३२ वर्षीय मित्र (साथी हवालदार) 'विश्वास पसरटे' ने ११-४-२००२ को पैठण की खुली जेल के शिविर में भाग लिया था। ११ जनवरी, ०३ को मेरा मित्र ड्यूटी पर अस्वस्थ नजर आया। पूछने पर 'थोड़ा अस्वस्थ हूं', कहा तो ड्यूटी पर ही हम दोनो ने थोड़ी देर साधना की और उसे आराम करने भेज दिया। १:३० बजे उसे अस्पताल ले जाया गया। वहां उसे जैसे पूर्वाभास हो गया और उसने कहा, 'मुझे साधना करने दो'। २:३० बजे हमें फोन पर खबर मिली वह इस दुनिया से चल बसा। सात घंटे पश्चात भी उसका शांत और सौम्य चेहरा देख कर हम लोग आश्चर्यचकित हुए।"


## दोहे धर्म के

**शुद्ध-धर्म का शांति-पथ, संप्रदाय से दूर।**
**शुद्ध-धर्म की साधना, मंगल से भरपूर॥**

**श्रद्धा जागी बुद्ध पर, चलूं बोधि के पंथ।**
**बोधि जगाऊं स्वयं की, मंगल मिले अनंत॥**

**श्रद्धा जागी धर्म पर, चलूं धर्म के पंथ।**
**सब पापों का हनन कर, बनूं स्वयं अरहंत॥**

**श्रद्धा जागी संत पर, बढ़ूं शांति के पंथ।**
**शांति समाये चित्त में, होय दुखों का अंत॥**

**श्रद्धा तो जागे मगर, छूटे नहीं विवेक।**
**श्रद्धा और विवेक से, मंगल जगे अनेक॥**

**श्रद्धा तो जागे मगर, अंध न बनने पाय।**
**प्रज्ञा ज्ञान प्रदीप की, ज्योति नहीं बुझ जाय॥**

**मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास**
११-१३, सनस प्लाजा, १३०२ बाजीराव रोड,
पुणे-४११००२, फोनः ४४८-६१९०
महालक्ष्मी मंदिर लेन, २२ भूलाभाई देसाई रोड,
मुम्बई-४०००२६, फोनः २४९२-३५२६
की मंगल कामनाओं सहित

## दूहा धरम रा

**धरम धरम तो सब कवै, पण जाणै ना कोय।**
**जो चित्त नै निरमळ करै, धरम जाणिये सोय॥**

**बाहर भीतर एक रस, सरल स्वच्छ ब्योहार।**
**कथनी करणी एक सी, यो हि धरम रो सार॥**

**प्रग्या सील समाधि ही, सुद्ध धरम रो सार।**
**काया वाणी चित्त रा, सुधरै सै ब्योहार॥**

**या हि धरम री परख है, यो हि धरम रो माप।**
**जीवन मँह धारण कर्यां, दूर हुवै संताप॥**

**सील धरम रो आंगणो, ध्यान धरम री भींत।**
**प्रग्या तो छत धरम री, मंगळ भुवन पुनीत॥**

**बीज भक्ति जड़ सील है, तणो समाधी जाण।**
**साखा प्रग्या धरम तरु, फळ लागै निरवाण॥**

**मेसर्स गो गो गारमेंट्स**
३१ –४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड,
१ला माला, कालबादेवी रोड, मुंबई - ४००००२.
फोनः ०२२- २२०५०४१४
की मंगल कामनाओं सहित



'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) २४४०८६, २४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४६, वैशाख पूर्णिमा,** १६ मई, २००३

**वार्षिक शुल्क** रु. २०/-,विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. २५०/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2003-05

Licenced to post **without Prepayment of postage** -- Licence number-- **AR/NSK-WP/3**
**Posting day- Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)



If not delivered please return to:-

**विपश्यना विशोधन विन्यास**
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३)२४४०७६
फैक्स : (०२५५३) २४४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
e-mail: info@giri.dhamma.org